

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

बनाम

संजय प्रताप गुप्ता @पप्पू और अन्य

सितंबर 20,2004

[न्यायाधिपति अरिजीत पासायत और न्यायाधिपति सी. के. ठाकर]

राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980-धारा 3(2) और 5 ए-हिरासत-आदेश दो पहलुओं पर प्रकाश डाला गया - उच्च न्यायालय ने यह कहते हुए आदेश रद्द कर दिया कि दोनों पहलू अविभाज्य हैं, पहले पहलू के समर्थन में साक्ष्य उपलब्ध नहीं कराए गए, आदेश अमान्य था - अपील पर, माना गया: हिरासत आदेश वैध था क्योंकि दोनों पहलू धारा 5-ए के मद्देनजर अलग किए जा सकते हैं और चूंकि मामला एक सार्वजनिक आदेश की स्थिति थी।

"कानून और व्यवस्था" और "सार्वजनिक व्यवस्था" के बीच अंतर पर चर्चा की गई।

प्रतिवादी-हिरासत को पारित आदेश के अनुसार हिरासत में लिया गया था

राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम 1980। हिरासत के आधार पर दो पहलुओं पर प्रकाश डाला गया, एक पूर्ववृत्त की आपराधिक पृष्ठभूमि से संबंधित और दूसरा विशेष घटना से संबंधित। बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका दायर कर हिरासत आदेश की वैधता पर सवाल उठाते हुए इस आधार पर कहा कि चूंकि हिरासत आदेश में दिए गए दो पहलू अविभाज्य थे और चूंकि पहले की घटनाओं से संबंधित आरोपों को साबित करने के लिए आवश्यक दस्तावेज बंदी को उपलब्ध नहीं कराए गए थे, इसलिए हिरासत के आदेश को अमान्य कर दिया गया था। राज्य का रुख यह था कि अधिनियम की धारा

5-ए के मद्देनजर दोनों पहलू अलग किए जा सकते हैं। उच्च न्यायालय ने हिरासत आदेश को रद्द कर दिया।

इस न्यायालय में अपील में बंदी ने तर्क दिया कि हिरासत के आधार पर दो पहलू अविभाज्य थे; धारा 5-ए मामले में लागू नहीं थी; हिरासत के आदेश का आधार, अधिक से अधिक कानून और व्यवस्था की स्थिति थी, न कि सार्वजनिक व्यवस्था की स्थिति; कि एक भी कृत्य को हिरासत की गारंटी देने वाले सार्वजनिक आदेश को प्रभावित करने के लिए पर्याप्त नहीं माना जा सकता था; और भले ही उच्च न्यायालय के आदेश को गलत माना जाए, फिर भी लंबे समय बीत जाने और कथित घटना और उसकी निरंतर हिरासत की आवश्यकता के बीच कोई सीधा संबंध न होने के कारण उसे हिरासत में नहीं लिया जाना चाहिए।

न्यायालय ने अपील स्वीकार करते हुए माना:

1. जबकि अभिव्यक्ति 'कानून और व्यवस्था' का दायरा व्यापक है क्योंकि कानून का उल्लंघन हमेशा व्यवस्था को प्रभावित करता है, 'सार्वजनिक व्यवस्था' का दायरा संकीर्ण है, और सार्वजनिक व्यवस्था केवल ऐसे उल्लंघन से प्रभावित हो सकती है जो समुदाय या जनता को प्रभावित करती है अत्याधिक। सार्वजनिक व्यवस्था पूरे देश या यहां तक कि एक निर्दिष्ट इलाके को ध्यान में रखते हुए समुदाय के जीवन की सम गति है। 'कानून और व्यवस्था' और 'सार्वजनिक व्यवस्था' के क्षेत्रों के बीच का अंतर समाज पर विचाराधीन अधिनियम की पहुंच की डिग्री और सीमा में से एक है। यह समुदाय के जीवन की सम गति को बाधित करने की अधिनियम की क्षमता है जो इसे सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव के लिए प्रतिकूल बनाती है। यदि कोई उल्लंघन अपने प्रभाव में जनता के व्यापक स्पेक्ट्रम से अलग सीधे तौर पर शामिल कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित है, तो यह केवल 'कानून और व्यवस्था' की समस्या पैदा कर सकता है। यह अव्यवस्था के एक विशेष विस्फोट से उत्पन्न आतंक लहर की लंबाई,

परिमाण और तीव्रता है जो इसे 'सार्वजनिक व्यवस्था' को प्रभावित करने वाले अधिनियम से 'कानून और व्यवस्था' से संबंधित अधिनियम के रूप में अलग करने में मदद करती है। 'सार्वजनिक व्यवस्था' कानून और व्यवस्था के सामान्य रखरखाव से कुछ अधिक है। शांति का प्रत्येक उल्लंघन सार्वजनिक अव्यवस्था का कारण नहीं बनता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि कानून और व्यवस्था बनाए रखने से भी अव्यवस्था को रोका जा सकता है, लेकिन अव्यवस्था एक व्यापक स्पेक्ट्रम है, जिसमें एक छोर पर छोटी गड़बड़ी और दूसरे छोर पर सबसे गंभीर और विनाशकारी घटनाएं शामिल हैं। 'कानून और व्यवस्था' और 'सार्वजनिक व्यवस्था' के क्षेत्रों के बीच सच्चा अंतर केवल कार्य की प्रकृति या गुणवत्ता में नहीं है, बल्कि समाज पर इसकी पहुंच की डिग्री और सीमा में भी निहित है। 'लॉ एंड ऑर्डर' समझता है 'सार्वजनिक व्यवस्था' को प्रभावित करने वाले विकारों की तुलना में कम गंभीरता वाले विकार, जैसे 'सार्वजनिक व्यवस्था' 'राज्य की सुरक्षा' को प्रभावित करने वाले विकारों की तुलना में कम गंभीरता वाले विकारों को समझती है। वर्तमान मामले में हिरासत के आधार से यह स्पष्ट है कि यह 'कानून और व्यवस्था' की स्थिति नहीं बल्कि 'सार्वजनिक व्यवस्था' की स्थिति थी। [566-ए-डी, जी, एच; 567-ई; 568-बी, डी]

कानू विश्वास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, ए आई आर (1972) एस. सी. 1656; डॉ राम मनोहर लोहिया बनाम बिहार राज्य और अन्य, [ 1966 ] 1 एससीआर 709; किशोरीमोहन बेरा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, [1972] 3 एस. सी. सी. 845; पुष्कर मुखर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, [1969] 2 एससीआर 635; अरुण घोष बनाम पश्चिम बंगाल का राज्य, [1970] 3 एससीआर 288; नागेंद्र नाथ मंडल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, [1972] 1 एस. सी. सी. 498; बाबुल मित्रा उर्फ अनिल मित्रा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य, [ 1973 ] 1 एस. सी. सी. 393; मिलान बानिक बनाम पश्चिम बंगाल राज्य,[1974] 4 एस. सी. सी. 504; कुसो साह बनाम बिहार राज्य और अन्य,[ 1974 ] 1 एस. सी. सी.185; हरप्रीत कौर बनाम महाराष्ट्र

राज्य, [1992] 2 एस. सी. सी 177; टी. के.गोपाल बनाम कर्नाटक राज्य, [2000] 6 एस. सी. सी 168 और महाराष्ट्र राज्य बनाम मोहम्मद. याकूब, [1980] 2 एससीआर 1158, पर भरोसा किया।

2. यह नहीं कहा जा सकता कि किसी एक कृत्य को यह मानने के लिए पर्याप्त नहीं माना जा सकता कि सार्वजनिक व्यवस्था प्रभावित हुई है। कृत्यों की संख्या मायने नहीं रखती। जो देखना है वह यह है कि इस कृत्य का जीवन की गति पर क्या प्रभाव पड़ता है, समाज पर इसकी पहुंच की सीमा और इसका प्रभाव क्या पड़ता है। [568-डी]

सुनील फूलचंद शाह बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2000) 3 एससीसी 409 करने के लिए भेजा।

3. हिरासत के आधार से दो पहलू स्पष्ट होते हैं यानी एक पूर्ववृत्त की आपराधिक पृष्ठभूमि से संबंधित और दूसरा किसी विशेष घटना से संबंधित, अलग-अलग व्यवहार किया गया। यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट हो जाता है क्योंकि आपराधिक पृष्ठभूमि की पृष्ठभूमि में हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी ने विशेष अधिनियम का उल्लेख किया है। वे स्पष्ट रूप से अलग करने योग्य हैं। (569-एफ, जी)

4. राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 की धारा 5-ए उन स्थितियों का ध्यान रखने के लिए पेश की गई थी जब हिरासत को उचित ठहराने के लिए एक या अधिक आधारों को अन्य आधारों से अलग किया जा सकता है। जहां हिरासत का आदेश एक से अधिक आधारों पर आधारित है, कानूनी कल्पना से यह माना जाएगा कि हिरासत के उतने ही आदेश हैं जितने आधार हैं, जिसका अर्थ है कि ऐसा प्रत्येक आदेश एक स्वतंत्र है। तथ्यात्मक स्थिति को देखते हुए, धारा 5-ए मामले पर लागू होती है और उच्च न्यायालय का इसके विपरीत मानना उचित नहीं था। (569-जी; 570-ए, बी)

अटॉर्नी जनरल/भारत और अन्य बनाम अमृतला/प्रजीवनदास और अन्य (1994) 5 एसईसी 54, के बाद।

5. इस प्रश्न का निर्धारण करने के लिए कि क्या उच्च न्यायालय का निर्णय स्वीकार्य नहीं होने के बाद हिरासत में लिए गए व्यक्ति को वापस हिरासत में जाना होगा, तथ्यात्मक स्थिति का विश्लेषण किया जाना चाहिए। ऐसे मामलों से निपटने के लिए कोई सीधा-सीधा फॉर्मूला नहीं हो सकता। यह देखना होगा कि क्या पिछले कृत्यों का प्रभाव जारी था या दोबारा होने की संभावना थी। जब वर्तमान मामले के पृष्ठभूमि तथ्यों पर विचार किया जाता है तो यह स्पष्ट होता है कि समय अंतराल बहुत व्यापक नहीं है और काफी समय से मामला इस न्यायालय में लंबित है। और बंदी को दायर की गई विशेष अनुमति याचिका पर अपना जवाब दाखिल करने में लगभग तीन महीने लग गए थे। इन कोणों से देखने पर यह स्पष्ट है कि लाइव लिंक नहीं टूटा है और हिरासत में लिए गए व्यक्ति की पूर्वाग्रहपूर्ण गतिविधियों के बारे में हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी की आशंका को गलत नहीं ठहराया जा सकता है। हिरासत की शेष अवधि काटने के लिए बंदी को तुरंत आत्मसमर्पण करना होगा। [570-सी, डी, ई)

आपराधिक अपीलिय क्षेत्राधिकार : आपराधिक अपील संख्या 1040/ 2004

2003 के डब्ल्यू.पी.संख्या 117 (एच.सी.) में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश दिनांक 16.5.2003 से।

सुनील गुप्ता, राज्य के लिए अतिरिक्त महाधिवक्ता, गावर केजरीवाल और प्रदीप मिश्रा अपीलार्थियों के लिए ।

ए. शरण, अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल, एस. ए. खान, सुश्री सुषमा सूरी, त्रिपुरारी रे, रवि कुमार वर्मा, रितेश अग्रवाल, विश्वजीत सिंह, सुश्री नीलम सिंह और रवि प्रकाश मेहरोत्रा उत्तरदाताओं के लिए।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया था

न्यायाधिपति अरिजीत पासायतः

अनुमति दी गई।

प्रतिवादी नंबर 1-संजय प्रताप गुप्ता@पप्पू (बाद में 'हिरासत' के रूप में संदर्भित) को राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 (संक्षेप में 'अधिनियम') की धारा 3(2) के तहत पारित हिरासत के आदेश के अनुसार हिरासत में लिया गया था। दिनांक 23.12.2002 का आदेश उसी दिन बंदी को तामील करा दिया गया। हिरासत के आदेश और आधार के अनुसार, हिरासत में लिए गए लोगों की गतिविधियों को सार्वजनिक व्यवस्था के लिए प्रतिकूल माना जाता था। दिनांक 13.10.2002 की एक घटना का विशेष उल्लेख किया गया था। बंदी और उसके सहयोगियों द्वारा की गई गोलीबारी के कारण आनंद कुमार जैन नामक व्यक्ति की जान चली गई। उपरोक्त आनंद कुमार जैन के पुत्र अजय कुमार जैन की जान लेने का प्रयास किया गया, लेकिन सौभाग्य से वह बच गया। भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में 'आईपीसी') की धारा 302 और 307 के तहत दंडनीय अपराध करने के लिए मामला दर्ज किया गया था। पहले की कई घटनाओं का भी संदर्भ दिया गया था, जिसमें हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी के अनुसार बंदी के आपराधिक इतिहास पर प्रकाश डाला गया था और बताया गया था कि वह कैसे आम जनता के मन में आतंक की भावना पैदा कर रहा था। उसे इसी तरह के पूर्वाग्रही कृत्य करने से रोकने और सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने की दृष्टि से कथित तौर पर हिरासत का आदेश पारित किया गया था।

हिरासत के आदेश की वैधता पर सवाल उठाने वाले बंदी द्वारा भारत के संविधान, 1950 (संक्षेप में 'संविधान') के अनुच्छेद 226 के तहत एक बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका दायर की गई थी। आक्षेपित निर्णय के द्वारा उच्च न्यायालय ने प्रार्थना स्वीकार कर ली और हिरासत के आदेश को रद्द कर दिया। उच्च न्यायालय के समक्ष हिरासत में लिए गए लोगों का रुख यह था कि हिरासत के आधार पर उजागर किए गए दो पहलू अलग नहीं किए जा सकते थे और एक दूसरे के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए

थे। चूँकि पहले की घटनाओं से संबंधित आरोपों को प्रमाणित करने के लिए आवश्यक दस्तावेज़ बंदी को उपलब्ध नहीं कराए गए थे, जिससे हिरासत का आदेश अमान्य हो गया।

दूसरी ओर राज्य का रुख यह था कि दोनों पहलू अलग किए जा सकते हैं। भले ही तर्कों के लिए एक भाग को समर्थन योग्य नहीं माना गया था, लेकिन वास्तव में अधिनियम की धारा 5-ए के मद्देनजर इसका कोई परिणाम नहीं था। उच्च न्यायालय इस आधार पर आगे बढ़ा कि उजागर किए गए दोनों पहलू एक-दूसरे पर निर्भर हैं और दोनों पहलुओं पर अलग-अलग विचार करने का कोई सवाल ही नहीं है। तदनुसार, हिरासत का आदेश पारित किया गया था।

अपील के समर्थन में, अपीलकर्ता-राज्य के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि अधिनियम की धारा 5-ए का दायरा और दायरा उच्च न्यायालय द्वारा पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया गया है। एक पहलू जिस पर प्रकाश डाला गया वह बंदी के आपराधिक इतिहास से संबंधित था और अतीत में उसके खिलाफ हिस्ट्रीशीटर के रूप में व्यवहार करने के लिए कई मामले कैसे दर्ज किए गए थे। दूसरा पहलू किसी खास घटना से जुड़ा है। इस अधिनियम के प्रभाव को नजरबंदी के आधार पर उजागर किया गया था, जिसमें स्पष्ट रूप से बताया गया था कि इस अधिनियम से जीवन की गति भी कैसे बाधित हुई। हालाँकि, बंदी हिरासत में था, उसकी जमानत पर रिहाई की संभावना को ध्यान में रखते हुए हिरासत का आदेश पारित किया गया था। बंदी को जमानत आवेदन आदि आवश्यक दस्तावेज़ भी उपलब्ध कराए गए। भारत संघ के विद्वान वकील ने राज्य के रुख का समर्थन किया।

जवाब में, बंदी के वकील ने कहा कि हिरासत के आधार में बताए गए दो पहलुओं को अलग नहीं किया जा सकता है, एक का दूसरे पर प्रभाव पड़ता है और उच्च न्यायालय ने उन्हें अविभाज्य माना है। तथ्यात्मक स्थिति को देखते हुए, अधिनियम

की धारा 5-ए का कोई अनुप्रयोग नहीं है। इसके अतिरिक्त, जिस घटना ने हिरासत के आदेश का आधार बनाया वह अधिकतम कानून और व्यवस्था की स्थिति थी न कि सार्वजनिक व्यवस्था की स्थिति। अंत में, यह प्रस्तुत किया गया कि भले ही यह माना जाता है कि उच्च न्यायालय का निर्णय खराब है, फिर भी लंबा समय बीत जाने और कथित घटना के बीच किसी भी जीवित संबंध के अभाव के कारण उसे वापस हिरासत में लेने का निर्देश नहीं दिया जाना चाहिए था। और उसकी निरंतर हिरासत की आवश्यकता। किसी एक कृत्य को हिरासत की गारंटी देने वाले सार्वजनिक आदेश को प्रभावित करने के लिए पर्याप्त नहीं माना जा सकता था। सुनील फूलचंद शाह बनाम यूनियन ऑफ इंडिया और अन्य, [2000] 3 एससीसी409 पर मजबूत निर्भरता रखी गई है।

महत्वपूर्ण मुद्दा यह है कि क्या बंदी की गतिविधियाँ सार्वजनिक व्यवस्था के लिए हानिकारक थीं। जबकि अभिव्यक्ति 'कानून और व्यवस्था' का दायरा व्यापक है क्योंकि कानून का उल्लंघन हमेशा व्यवस्था को प्रभावित करता है। 'सार्वजनिक व्यवस्था' का दायरा सीमित है, और सार्वजनिक व्यवस्था केवल ऐसे उल्लंघन से प्रभावित हो सकती है जो समुदाय या जनता को बड़े पैमाने पर प्रभावित करती है। सार्वजनिक व्यवस्था पूरे देश या यहां तक कि एक निर्दिष्ट इलाके को ध्यान में रखते हुए समुदाय के जीवन की सम गति है। 'कानून और व्यवस्था' और 'सार्वजनिक व्यवस्था' के क्षेत्रों के बीच का अंतर समाज पर विचाराधीन अधिनियम की पहुंच की डिग्री और सीमा में से एक है। यह समुदाय के जीवन की सम गति को बाधित करने की अधिनियम की क्षमता है जो इसे सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव के लिए प्रतिकूल बनाती है। यदि इसके प्रभाव में कोई उल्लंघन केवल जनता के व्यापक स्पेक्ट्रम से अलग सीधे तौर पर शामिल कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित है, तो यह केवल कानून और व्यवस्था की समस्या पैदा कर सकता है। यह अव्यवस्था के एक विशेष विस्फोट से उत्पन्न आतंक लहर की लंबाई, परिमाण और तीव्रता है जो इसे 'सार्वजनिक व्यवस्था'



को प्रभावित करने वाले अधिनियम से 'कानून और व्यवस्था' से संबंधित अधिनियम के रूप में अलग करने में मदद करती है। पूछने का प्रश्न यह है: "क्या इससे समुदाय के वर्तमान जीवन में अव्यवस्था पैदा होती है, जिससे सार्वजनिक व्यवस्था में गड़बड़ी होती है या यह केवल एक व्यक्ति को प्रभावित करता है और समाज की शांति को प्रभावित करता है"? इस प्रश्न को हर हाल में अपने तथ्यों पर खरा उतरना होगा।

"सार्वजनिक व्यवस्था" वह है जिसे फ्रांसीसी 'ऑर्डर पब्लिक' कहते हैं और यह कानून और व्यवस्था के सामान्य रखरखाव से कुछ अधिक है। यह निर्धारित करने के लिए अपनाया जाने वाला परीक्षण कि क्या कोई अधिनियम कानून और व्यवस्था या सार्वजनिक व्यवस्था को प्रभावित करता है; क्या इससे कोई परिणाम होता है? समुदाय के वर्तमान जीवन में अशांति, जिसे सार्वजनिक व्यवस्था में अशांति माना जाए या क्या यह समाज की शांति को छोड़कर केवल एक व्यक्ति को प्रभावित करता है? (देखें कानून विश्वास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, एआईआर (1972) एससी 1656)

"सार्वजनिक आदेश" सार्वजनिक सुरक्षा और शांति का पर्याय है: "यह राष्ट्रीय उथल-पुथल के विपरीत महत्व के उल्लंघन से जुड़ी अव्यवस्था की अनुपस्थिति है; जैसे कि क्रांति, नागरिक संघर्ष, युद्ध, राज्य की सुरक्षा को प्रभावित करता है"। अगर सार्वजनिक व्यवस्था में खलल पड़ता है, तो सार्वजनिक अव्यवस्था अवश्य होती है। शांति का हर उल्लंघन सार्वजनिक अव्यवस्था का कारण बनता है। जब दो शराबी झगड़ते हैं और लड़ते हैं, तो सार्वजनिक अव्यवस्था नहीं, बल्कि अव्यवस्था होती है। उनसे कानून और व्यवस्था बनाए रखने की शक्तियों के तहत निपटा जा सकता है, लेकिन इस आधार पर हिरासत में नहीं लिया जा सकता कि वे सार्वजनिक व्यवस्था में खलल डाल रहे थे। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अव्यवस्था को कानून और व्यवस्था बनाए रखने से भी रोका जा सकता है, लेकिन अव्यवस्था एक व्यापक स्पेक्ट्रम है जिसमें एक छोर पर छोटी गड़बड़ी और दूसरे छोर पर सबसे गंभीर और विनाशकारी

घटनाएं शामिल हैं। (देखें डॉ. राममनोहर लोहिया बनाम बिहार राज्य और अन्य[1966] एससीआर 709)।

'सार्वजनिक व्यवस्था', 'कानून और व्यवस्था' और 'राज्य की सुरक्षा' काल्पनिक रूप से तीन संकेंद्रित वृत्त बनाते हैं, सबसे बड़ा कानून और व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करता है, अगला सार्वजनिक व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करता है और सबसे छोटा राज्य की सुरक्षा का प्रतिनिधित्व करता है। कानून का प्रत्येक उल्लंघन आवश्यक रूप से व्यवस्था को प्रभावित करता है, लेकिन कानून और व्यवस्था को प्रभावित करने वाला कोई कार्य आवश्यक रूप से सार्वजनिक व्यवस्था को भी प्रभावित नहीं कर सकता है। इसी तरह, कोई अधिनियम सार्वजनिक व्यवस्था को प्रभावित कर सकता है, लेकिन जरूरी नहीं कि राज्य की सुरक्षा को प्रभावित करे। सच्ची परीक्षा प्रकार की नहीं, बल्कि कार्य की क्षमता की होती है। एक कार्य केवल व्यक्तियों को प्रभावित कर सकता है, जबकि दूसरा, समान प्रकार का होते हुए भी, इतना प्रभाव डाल सकता है कि यह समुदाय के जीवन की सम गति को बिगाड़ देगा। इसका मतलब यह नहीं है कि कोई ओवरलैपिंग नहीं हो सकती है, इस अर्थ में कि कोई अधिनियम एक ही समय में दो अवधारणाओं के अंतर्गत नहीं आ सकता है। उदाहरण के लिए, सार्वजनिक व्यवस्था को प्रभावित करने वाला कोई कार्य सार्वजनिक व्यवस्था और राज्य की सुरक्षा दोनों को प्रभावित कर सकता है। [देखें किशोरी मोहन बेरा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, [1972] 3 एससीसी 845; पुष्कर मुखर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, [1979] 2 एससीआर 635; अरुण घोष बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, [1970] 3 एससीआर 288 और नागेंद्र नाथ मोंडा/ बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, [1972] 1 एससीसी498।

अरुण घोष के मामले (सुप्रा) में 'कानून और व्यवस्था' और 'सार्वजनिक व्यवस्था' के बीच अंतर को संक्षेप में बताया गया है। उस निर्णय के अनुसार 'कानून और व्यवस्था' और 'सार्वजनिक व्यवस्था' के क्षेत्रों के बीच वास्तविक अंतर "समाज पर

विचाराधीन अधिनियम की पहुंच की डिग्री और सीमा में से एक है"। न्यायालय ने बताया कि "कार्य अपने आप में अपनी गंभीरता का निर्धारक नहीं है। इसकी गुणवत्ता में यह भिन्न नहीं हो सकता है। लेकिन इसकी क्षमता में यह बहुत भिन्न हो सकता है"। (देखें बाबू/मित्रा उर्फ अनिल मित्रा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य[1973] एससीसी 393 और मिलन बनिक बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, [1974] 4 एसईसी 504।

कानून और व्यवस्था और सार्वजनिक व्यवस्था के क्षेत्रों के बीच वास्तविक अंतर न केवल अधिनियम की प्रकृति या गुणवत्ता में है, बल्कि समाज पर इसकी पहुंच की डिग्री और सीमा में भी है। प्रकृति के समान, लेकिन अलग-अलग संदर्भों और परिस्थितियों में किए गए कार्य, अलग-अलग प्रतिक्रियाओं का कारण बन सकते हैं। एक मामले में यह केवल विशिष्ट व्यक्तियों को प्रभावित कर सकता है, और इसलिए केवल कानून और व्यवस्था की समस्या को छूता है, जबकि दूसरे में यह सार्वजनिक व्यवस्था को प्रभावित कर सकता है। इसलिए, कार्य स्वयं अपनी गंभीरता का निर्धारक नहीं है। अपनी गुणवत्ता में यह अन्य समान कृत्यों से भिन्न नहीं हो सकता है, लेकिन अपनी क्षमता में, यानी समाज पर इसके प्रभाव में, यह बहुत भिन्न हो सकता है।

दोनों अवधारणाओं में अच्छी तरह से परिभाषित रूपरेखाएँ हैं, यह अच्छी तरह से स्थापित है कि चोरी और हमले के छिटपुट और असंगठित अपराध सार्वजनिक व्यवस्था के मामले नहीं हैं क्योंकि वे सार्वजनिक जीवन के समान प्रवाह को प्रभावित नहीं करते हैं। कानून का उल्लंघन कुछ हद तक अव्यवस्था को जन्म देने के लिए बाध्य है, लेकिन जरूरी नहीं कि कानून के हर उल्लंघन के परिणामस्वरूप सार्वजनिक अव्यवस्था हो। कानून और व्यवस्था सबसे बड़े पैमाने का प्रतिनिधित्व करती है जिसके भीतर अगला घेरा सार्वजनिक व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करता है और सबसे छोटा घेरा राज्य की सुरक्षा का प्रतिनिधित्व करता है। "कानून और व्यवस्था" "सार्वजनिक व्यवस्था" को

प्रभावित करने वाले विकारों की तुलना में कम गंभीरता वाले विकारों को समझती है, ठीक वैसे ही जैसे "सार्वजनिक व्यवस्था" "राज्य की सुरक्षा" को प्रभावित करने वाले विकारों की तुलना में कम गंभीरता वाले विकारों को समझती है। [देखें कुसो साह बनाम बिहार राज्य और अन्य [1974] 1 एससीसी185, हरप्रीत कौर बनाम महाराष्ट्र राज्य, [1992] 2 एससीसी 177, टी.के.गोपाल बनाम कर्नाटक राज्य, [2000] 6 एससीसी 168 और महाराष्ट्र राज्य बनाम मोहम्मद याकूब, [1980] 2 एससीआर 1158]।

यह रुख स्पष्ट रूप से निराधार है कि किसी एक कृत्य को यह मानने के लिए पर्याप्त नहीं माना जा सकता कि सार्वजनिक व्यवस्था प्रभावित हुई है। कृत्यों की संख्या मायने नहीं रखती। जो देखना है वह यह है कि इस कृत्य का जीवन की गति पर क्या प्रभाव पड़ता है, समाज पर इसकी पहुंच की सीमा और इसका प्रभाव क्या पड़ता है।

हिरासत के आधारों से यह स्पष्ट है कि यह कानून और व्यवस्था की स्थिति नहीं थी, बल्कि सार्वजनिक व्यवस्था की स्थिति थी, जैसा कि राज्य के विद्वान वकील ने सही ढंग से तर्क दिया था। हिरासत के आधार का प्रासंगिक विवरण इस प्रकार है:

"पुलिस अधीक्षक,मैनपुरी के पत्र तथा अपर पुलिस अधीक्षक,मैनपुरी की रिपोर्ट के साथ संलग्न थाना कोतवाली,मैनपुरी के प्रभारी निरीक्षक की रिपोर्ट तथा उसके साथ संलग्न अभिलेखों से यह स्पष्ट होता है कि आप आपराधिक प्रवृत्ति के व्यक्ति हैं तथा सहयोग में हैं अपने सहयोगियों के साथ अवैध हथियारों के बल पर भय और आतंक पैदा करके, व्यापारियों और प्रॉपर्टी डीलरों से जबरन और अवैध रूप से धन वसूल करना, आप आपराधिक बल का उपयोग करके, मारपीट (शारीरिक हमला) में शामिल होकर और अन्य आपराधिक कृत्यों का सहारा लेकर आदतन हैं। जो भी व्यक्ति हो, उसे आतंकित करके अपराध करें इन बढ़ती आपराधिक गतिविधियों का विरोध करते हुए आम जनता के मन में भय और आतंक का मनोविकार घर कर गया।

इसी पृष्ठभूमि में आप अपना आधिपत्य स्थापित करने के लिए दिनांक 13.10.2002 को प्रातः 11.00 बजे अपने अन्य साथियों के साथ स्कूटर पर सवार होकर नगर मैनपुरी के व्यस्ततम बाजार, बड़ा चौराहा के पास, शफी होटल के सामने जा रहे थे। दिन के समय सड़क पर ही प्रोपर्टी डीलर श्री आनंद कुमार जैन को रोका और उन पर अंधाधुंध गोलियां चलाकर योजनाबद्ध तरीके से जघन्य हत्या कर दी। इस आपराधिक कृत्य के समय जब मृतक के बेटे अजय कुमार जैन ने उसे बचाना चाहा पिताजी, आपने उसे लक्ष्य करके गोली चलाई जिसने किसी तरह भागकर खुद को बचाया।

किसी की हिम्मत नहीं हुई कि उक्त व्यस्त बाजार में मृतक को आपसे और आपके साथियों से कौन बचा सके। आपके एवं आपके सहयोगियों द्वारा सरेआम फायरिंग करने एवं अपने आपराधिक बल का प्रदर्शन करने के फलस्वरूप पूरे बाजार में भय एवं आतंक का माहौल उत्पन्न हो गया। व्यस्त बाजार में की गई गोलीबारी और वहां अपने आपराधिक बल के प्रदर्शन के कारण, वहां आने वाले लोगों में अफरा-तफरी मच गई और वे भाग गए और खुद को सुरक्षित स्थानों पर छिपा लिया। सारा बाजार खाली हो गया और सार्वजनिक व्यवस्था पूरी तरह भंग हो गई। मृतक का शव सड़क पर पड़ा रहा और काफी खून बहता रहा। बड़ा ही भयानक दृश्य उत्पन्न हो गया। किसी को भी मृतक के शव के पास जाने की हिम्मत नहीं हुई। मृतक का बेटा अजय कुमार जैन किसी तरह अपनी जान बचाकर भाग गया और उसने इस हत्या के मामले और घटना की सूचना कोतवाली मैनपुरी को दी और थाने में लिखित रिपोर्ट दर्ज कराई, जिसके आधार पर सुबह 45 बजे प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई। जिस पर अपराध क्रमांक 1475/2002 भारतीय दंड विधान की धारा 307/302 के तहत दर्ज किया गया था। इस अपराध का विवरण जनरल डायरी में सुबह 11.45 बजे रिपोर्ट संख्या 22 में संक्षेप में दर्ज किया गया था। एफआईआर और जीडी की रिपोर्ट की सच्ची प्रतियां अनुबंध 1 और 2 के रूप में संलग्न हैं।

हिरासत के आधार से उद्धृत भाग का एक मात्र अवलोकन यह स्पष्ट करता है कि दो पहलू यानी एक पूर्ववृत्त की आपराधिक पृष्ठभूमि से संबंधित और दूसरा किसी विशेष घटना से संबंधित, अलग-अलग व्यवहार किया गया था। यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट हो जाता है क्योंकि अपराधी की पृष्ठभूमि में हिरासत में लेने का अधिकार है पूर्ववृत्त विशेष कार्य को संदर्भित करते हैं। इसलिए, एक सामान्य पृष्ठभूमि थी, और दूसरी विशेष घटना थी।

वे स्पष्ट रूप से अलग करने योग्य हैं। अधिनियम की धारा 5-ए उन स्थितियों का ध्यान रखने के लिए पेश की गई थी जब हिरासत को उचित ठहराने के लिए एक या अधिक आधारों को अन्य आधारों से अलग किया जा सकता है।

भारत के अटॉर्नी जनरल और अन्य बनाम अमृतलाल प्रजीवनदास और अन्य [1994] 5 एसईसी 54 में यह देखा गया कि जहां हिरासत का आदेश एक से अधिक आधारों पर आधारित है, कानूनी कल्पना से यह माना जाएगा कि उतने ही आदेश हैं हिरासत में रखने के ऐसे आधार हैं जिनका मतलब है कि ऐसा प्रत्येक आदेश स्वतंत्र है। उस मामले में संविधान पीठ विदेशी मुद्रा संरक्षण और तस्करी गतिविधियों की रोकथाम अधिनियम, 1974 (संक्षेप में 'सीओएफ ईपीओएसए अधिनियम') की धारा 5-ए के दायरे पर विचार कर रही थी, जो अधिनियम की धारा 5-ए के बराबर है। विश्लेषण की गई तथ्यात्मक स्थिति को ध्यान में रखते हुए, अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि धारा 5-ए मामले पर लागू होती है और उच्च न्यायालय का इसके विपरीत मानना उचित नहीं था। इसलिए उच्च न्यायालय का निर्णय स्पष्ट रूप से बचाव योग्य नहीं है

विचार करने योग्य शेष प्रश्न यह है कि क्या बंदी को वापस हिरासत में जाना होगा, यह मानने के बाद कि उच्च न्यायालय का निर्णय टिकाऊ नहीं है। ऐसे मामलों से निपटने के लिए कोई सीधा-सीधा फॉर्मूला नहीं हो सकता। यह प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। इस प्रश्न का निर्धारण करने के लिए कि क्या बंदी को

वापस हिरासत में जाना है, तथ्यात्मक स्थिति का विश्लेषण करना होगा। यह देखना होगा कि क्या पिछले कृत्यों का प्रभाव जारी रहा या फिर दोबारा पड़ने की संभावना है। जब वर्तमान मामले के पृष्ठभूमि तथ्यों पर विचार किया जाता है तो यह स्पष्ट होता है कि समय अंतराल बहुत अधिक नहीं है और काफी लंबे समय से मामला इस न्यायालय में लंबित है और हिरासत में लिए गए विशेष अनुमति याचिका पर अपना जवाब दाखिल करने में लगभग तीन महीने लग गए थे। इन कोणों से देखने पर यह स्पष्ट है कि लाइव लिंक टूटा नहीं है और हिरासत में लिए गए व्यक्ति की पूर्वाग्रहपूर्ण गतिविधियों के बारे में हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी की आशंका को गलत नहीं ठहराया जा सकता है। उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय को निरस्त किया जाता है। हिरासत की शेष अवधि काटने के लिए बंदी को तुरंत आत्मसमर्पण करना होगा। उपरोक्त सीमा तक अपील स्वीकार की जाती है।

के के टी

अपील की अनुमति दी जाती है।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक अधिवक्ता निशा पालीवाल द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और अधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।